हिन्दी साहित्य

बंगीय भूमिका

कृष्णबिहारी मिश्र

भूमिका

उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल से ही खड़ी बोली गद्य की यात्रा नाना सरणियों से गतिशील हुई थी। फोर्ट विलियम कालेज (सदासुख लाल, इंशा अल्ला खाँ और सदल मिश्र की अध्यापना और रचनात्मक कार्य), पत्रकारिता और धर्म-प्रचार के विभिन्न आयोजनों के माध्यम से शुरू होने वाली खड़ी बोली गद्य की यात्रा विद्या-साधकों की कठोर तपस्या से छोटी कालावधि में ही समृद्धि की ऊँचाई पर पहुँच गयी। खड़ी बोली का गद्य जो आज हिन्दी-क्षेत्र में सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान के शिक्षण, राजव्यवस्था-संचालन तथा अन्तर्प्रान्तीय विचार-विनिमय के समर्थ माध्यम के रूप में स्वीकृत-सम्मानित है, उसका इतिहास बहुत थोड़े दिनों का है। संसार के भाषा-वैज्ञानिक इतिहास में कदाचित् यह पहली घटना है कि इतने अल्पकाल में किसी भाषा का गद्य इस गति से विकसित और परिमार्जित हुआ हो और देखते-ही-देखते वह एक वृहत् क्षेत्र में उसके सभी सारस्वत कार्यों के सक्षम माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित हो गया हो। भाषा की यह विकास-क्षिप्रता भाषा-विज्ञान के अध्येता को विस्मित करने वाली है।

इस समृद्धि को खड़ा करने वाले आधार-स्तम्भों की ओर से उदासीन हो रहे लोगों की अकृतज्ञ मुद्रा से क्षुब्ध होकर आचार्य शिवपूजन सहाय ने सन् 1928 में लिखा था, "आज हिन्दी की उन्नति देखकर छाती फूल उठी है, पर उस उन्नति की ज्वाला को अपनी हड्डियाँ जला-जलाकर धधकाने वाले लेखकों की दयनीय दशा पर कोई दो बूँद आँसू भी नहीं गिराता।"[1] यह व्यथा आचार्य शिवपूजन सहाय ने तब प्रकट की थी जब पुरुखों के सम्मान-संस्कार में गिरावट शुरू ही हुई थी, तब के लोग अपनी समृद्ध विरासत से बेखबर और उदासीन नहीं हुए थे। भयंकर ढाही तो शुरू हुई

---

1. आचार्य शिवपूजन सहाय की समृद्ध साधना की चर्चा करते अपने व्यक्तिगत पत्र में हिन्दी के विशिष्ट कवि श्री कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह ने मुझे लिखा था, "मैं उनकी साधना की भभूत लगाकर चल रहा हूँ। और चाहता हूँ कि हिन्दी के निर्माण में उनके दधीचि की जो हड्डियाँ लगी हैं, उनका सही-सही मूल्यांकन हो।" आचार्य शिवपूजन जी के अवदान को रेखांकित करने वाले दो निबन्ध इस ग्रन्थ में दिये गये हैं, जो उनके विद्या-व्यक्तित्व के विविध पक्षों को स्पर्श करते हैं।

आज़ादी के बाद, जब दायित्वहीनता की सनक अशुभ मुद्रा में पूरे देश में क्रियाशील हो उठी। पहले के लोग दायित्व-सचेत थे। उनका इतिहास-बोध पुष्ट था। अपने समय के सवालों की उन्हें सही समझ थी। भविष्य-निर्माण की महत् प्रेरणा से वे अपने समय के निकट प्रत्यूहों से कठोर लड़ाई लड़ते रहे, जातीय स्वाभिमान की रक्षा के लिए 'घर का धान पुआल में मिलाते' रहे, परवर्ती पीढ़ी के लिए अनुकूल आबोहवा की रचना करते अपनी हड्डियाँ गलाते रहे और प्राणाहुति द्वारा सत्य-समर्थन की कला सिखाते रहे। हिन्दी की जिस समृद्ध मुद्रा और प्राणवत्ता पर हम गर्वोन्नत हैं उसका निर्माण पूर्ववर्ती साधकों की कठोर तपस्या ने किया है। इतिहास साक्षी है, बंगाल के हिन्दी साधकों की अप्रतिम और अग्रणी भूमिका रही है।

हिन्दी पत्रकारिता की जन्मभूमि कलकत्ता है। कलकत्ता से ही हिन्दी-अध्यापन की आधुनिक परम्परा शुरू हुई। 30 मई, 1826 को हिन्दी के प्रथम पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' का प्रकाशन 'हिन्दुस्तानियों के हित के हेत' कलकत्ता से हुआ था। उत्तर उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में हिन्दी पत्रकारिता को कलकत्ता ने समृद्ध धरातल दिया। 'भारत मित्र', 'सारसुधानिधि', 'उचितवक्ता', 'नृसिंह' और 'देवनागर' इस काल-खण्ड की विशिष्ट हिन्दी पत्रिकाएँ हैं जिनका मूल स्वर जातीय अभीप्सा से स्फूर्त है। पं. गोविन्दनारायण मिश्र, पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र, पं. सदानन्द मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पं. रुद्रदत्त शर्मा, पं. अमृतलाल चक्रवर्ती, पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर, पं. उमापति दत्त शर्मा, पं. जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, पं. माधव प्रसाद मिश्र और पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी की समृद्ध प्रज्ञा इसी काल में कलकत्ता की पत्रकारिता के माध्यम से सक्रिय थी। और इस प्रातिभ शक्ति के आधार पर कलकत्ता हिन्दी का प्रमुख केन्द्र बन गया था। यह आधार-आकर्षण 'मतवाला' के प्रकाशन-काल तक अम्लान रहा। परवर्ती काल में पं. झाबरमल्ल शर्मा, पं. लक्ष्मणनारायण गर्दे, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, भगवतीचरण वर्मा, डॉ. हेमचन्द्र जोशी, इलाचन्द्र जोशी, श्री अज्ञेय का सक्रिय प्रवास-क्षेत्र कलकत्ता हिन्दी जगत् में शीर्ष चर्चा का विषय बना।

भाषा और साहित्य के निर्णय-सिन्धु की भूमिका पर कलकत्ता में एक समय आचार्य गोविन्द नारायण मिश्र और महामहोपाध्याय, पं. सकलनारायण शर्मा जैसे मनीषी थे। ऐतिहासिक घटना है कि 'भारतमित्र'-सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने भाषा के प्रश्न पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से जब संघर्ष शुरू किया था और द्विवेदीजी का पक्ष कमजोर होता जा रहा था, तब आचार्य गोविन्द नारायण मिश्र ने अपने वैदुष्य से उन्हें सहारा दिया था। अपने समय के सर्वश्रेष्ठ हिन्दी-आचार्य को कलकत्ते के एक पत्रकार ने विद्या-चुनौती दी थी, जिसका ज्ञान-भित्तिक उत्तर कलकत्ते के ही विद्वान ने दिया था। बंगाल की यह ऐतिहासिक विद्या-महत्ता स्मरणीय है।

गुप्तजी की भूमिका सव्यसाची की भूमिका थी। उनका एक हाथ अपने समय के सर्वश्रेष्ठ आचार्य को उदग्र शैली में वैदुष्य के धरातल से चुनौती दे रहा था, दूसरा साम्राज्यशाही के नृशंस प्रतिनिधि लार्ड कर्ज़न से पंजा लड़ा रहा था। सरकारी कुकृत्यों और सर्वमान्य आचार्य की भाषा-च्युति को वे पूरी सजगता और शक्तिमत्ता के साथ अपनी कलम की उदग्र मुद्रा द्वारा टोक रहे थे। और बहुत बाद में राय कृष्ण दास ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से जब पूछा था, "आपकी राय में सबसे अच्छी हिन्दी कौन लिखता है।" द्विवेदीजी का उत्तर था, "अच्छी हिन्दी बस एक आदमी लिखता था—बालमुकुन्द गुप्त।"[1]

गुप्तजी की पीढ़ी के ही कलकत्ते के हिन्दी पत्रकार थे पं. रुद्रदत्त शर्मा, पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र और पं. अमृतलाल चक्रवर्ती जिनके आलोकवर्षी चरित्र का परिचय बहुत थोड़े लोगों को है। हिन्दी-हित की बलवती प्रेरणा के चलते इन पत्रकारों ने नाना प्रकार की सांसारिक अभाव-यातना को हमेशा के लिए अपने यहाँ आमन्त्रित कर लिया था। जिस राष्ट्रीय अभीप्सा को जगाने और वाणी देने के लिए 'उचित वक्ता' का जन्म हुआ था उसे जीवित रखने के लिए पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र को कई भूमिकाओं पर उतरना पड़ता था। पत्र की सामग्री तैयार करना, उसे कम्पोज करना, छापना, ग्राहकों तक पहुँचाना और उन्हें पढ़कर सुनाना-समझाना—यह सब कुछ पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र को अकेले करना पड़ता था। इस कठोर साधना में जो निजी अर्थ-व्यय हुआ, उसके सम्बन्ध में पं. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने लिखा है कि 'दुर्गाप्रसादजी ने घर का धान पुआल में मिलाया'। इसी जागृत विद्या-प्रेरणा से अनुप्राणित-अनुशासित होने के कारण पं. रुद्रदत्त शर्मा को भूखों मरना पड़ा; पं. अमृतलाल चक्रवर्ती को कर्ज न चुका पाने के अपराध में जेल जाना पड़ा। यह गर्व नहीं, ग्लानि का विषय है कि महत् राष्ट्रीय दायित्व पूरा करने वाले कलकत्ते के इन हिन्दी पत्रकारों को अपनी सामान्य गार्हस्थिक जिम्मेदारी पूरी करने में असमर्थ होने के कारण अर्थ सम्बन्धी चरम अपमान झेलना पड़ा; भोजन और औषधि के अभाव में मृत्यु को वरण करना पड़ा। यातना और संघर्ष से भरी पूर्व पुरुषों की जीवन-यात्रा नयी पीढ़ी के लिए प्रेरणादायिनी है। भारत के दुर्भाग्य-मोचन की महत् भूमिका पर क्रियाशील वे विद्या-साधक "भारत के दुर्भाग्य को अपना दुर्भाग्य और भारत के सौभाग्य को अपना सौभाग्य" समझते थे। यही जातीय संस्कार उनकी अक्षय आस्था का आधार था। परवर्ती काल में जब जातीय संस्कार में स्खलन आया तो समृद्ध परम्परा वाले इसी नगर में एक ऐसे नामी पत्रकार हुए जिनकी व्यवहार-बुद्धि से अर्जित भौतिक वैभव को देखकर आचार्य शिवपूजन सहाय चमक उठे थे। उसी समय एक दूसरे पत्रकार हुए जो सामन्ती शैली में खादी

---

1. द्रष्टव्य—बालमुकुन्द गुप्त—स्मारक ग्रन्थ, पृ. 368

परिधान को सँवारकर इस्तेमाल करते थे। बाद में इस जाति के पत्रकार कलकत्ता में ही नहीं पूरे देश में विपुल संख्या में दिखाई पड़ने लगे। मूल्य-निष्ठा में जीने वाली पीढ़ी के लिए यह विस्मय और खेद की बात थी कि पत्रकारिता को कोई अर्थार्जन का धन्धा बनावे। गणेश शंकर विद्यार्थी ने इसी मनःस्थिति में कहा था—"पत्रकारिता जैसी पवित्र चीज को भी लोगों ने आय का साधन बना लिया है।" पत्रकारिता को व्यवसाय बनाकर धन कमाने वाले लोगों पर कलकत्ता की एक सभा में उग्रजी ने व्यंग्य करते हुए कहा था कि सच्चा पत्रकार वही है जिसके पास पत्र और कार दोनों हों!

× × ×

ऊँचे आदर्श वाले प्रख्यात भारतीय पत्रकार थे रामानन्द चटर्जी, जिनके उद्योग से 'प्रवासी' (बांग्ला), 'माडर्न रिब्यू' (अंग्रेजी) और 'विशाल भारत' (हिन्दी) का प्रकाशन हुआ था। तीनों के स्तर में वह अन्तर नहीं था, जो एक ही प्रतिष्ठान से निकलने वाले 'देश' (बांग्ला), 'सण्डे' (अंग्रेजी) और 'रविवार' (हिन्दी) के स्तर में हैं। कदाचित् 'रविवार'—सम्पादक को वह स्वाधीनता भी प्राप्त नहीं है जो 'विशाल भारत'-सम्पादक को उपलब्ध थी।[1] पूँजीपति-प्रतिष्ठान से निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं का वैशिष्ट्य-विवेचन करते पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर ने कहा था कि "वेतन भोगी सम्पादक मालिक का काम करेंगे और बड़ी खूबी के साथ करेंगे। पर आज भी हमें जो स्वतन्त्रता प्राप्त है वह उन्हें न होगी।" आचार्य शिवपूजन सहाय ने पत्रकारिता की इस श्रेणी पर टिप्पणी करते लिखा था, "कोई पूँजीपति अथवा धनाढ्य प्रकाशक अगर सर्वांग सुन्दर एवं सुसम्पादित पत्र निकालता और चलाता भी है तो उसके शान-गुमान का कभी अन्दाज ही नहीं मिलता, उसके मिज़ाज और दिमाग़ का पारा हमेशा चढ़ा ही रहता है। वह धरातल पर खड़े साहित्यिक सम्पादक पर सातवें आसमान से नज़र डालता है। ऐसे संकुचित दृष्टिकोण के पत्राध्यक्षों से हिन्दी पत्रों की मर्यादा नहीं बढ़ सकती।" मगर जो पत्र पूँजीपति-प्रतिष्ठान से मुक्त हैं और जिन्हें सत्य के पक्ष-समर्थन की पूरी आज़ादी है, वे या तो निहायत स्तरहीन हैं या फिर किसी राजनीतिक दल के प्रवक्ता।[2]

---

1. द्रष्टव्य—पं. बनारसीदास चतुर्वेदी एवं श्री अज्ञेय का संस्मरण।
2. एक खास राजनीतिक दल में आस्था रखनेवाले श्री अशोक जोशी के पत्र 'आनेवाला कल' की मुद्रा साम्प्रदायिक रंग से एक अंश तक मुक्त है, क्योंकि समय-समय पर इसमें बड़ी निष्पक्ष और प्रखर टिप्पणियाँ प्रकाशित होती हैं। किन्तु साधन की न्यूनता के चलते या कि सम्पादक की अनवधानता के चलते इस पत्र का भी स्तर सामान्य से नीचे ही है। दृष्टि-सन्तुलन और भाषाच्युत्ति पर ध्यान दिये बगैर ही कोई भी विप्लवी तेवर वाली टिप्पणी और रचना अशोक जोशी अपनी पत्रिका में छाप देते हैं। कोई भी दायित्व-सजग सम्पादक इतना उदार नहीं हो सकता। हिन्दी दैनिक पत्रों में 'सन्मार्ग' का स्तर उल्लेखनीय है। किन्तु बांग्ला दैनिक पत्रों की तुलना में इसका स्तर भी नीचा ही है।

दल का आदेश-निर्देश ही एक का सत्य है और दूसरे का एकान्त प्रयोजन सरकारी-गैरसरकारी विज्ञापन द्वारा पैसा कमाना। 'रविवार' के अलावे आज कलकत्ता से कुछ दैनिक, साप्ताहिक पत्र, एकाध राजनीतिक पत्रिकाएँ और साहित्यिकों के उद्योग से अनियतकालीन लघु पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं, जिनसे यहाँ के विद्याव्रतियों के विवेक, प्रतिभा और सुरुचि का समुचित प्रकाशन नहीं हो पाता। यहाँ के रचनाकरों की प्रातिभ प्रखरता को यदा-कदा छोटी पत्रिकाएँ ही प्रस्तुत कर पाती हैं, जो अलम् नहीं माना जा सकता।[1]

प्रतिभा-प्रस्तुति के सरकारी माध्यम हैं आकाशवाणी और दूरदर्शन। कलकत्ता के आकाशवाणी और दूरदर्शन केन्द्र की भूमिका इधर हिन्दी-हित के प्रतिकूल ही रही है। दुर्भाग्य यह है कि इस प्रतिकूल भूमिका के प्रतिरोध की आवाज़ वे कभी नहीं उठाते जिनकी आवाज़ सरकारी महाल में सुनी-गुनी जाती है। आकाशवाणी के हिन्दी-कार्यक्रम को गोपेश, मोहन सिंह सेंगर और श्री दीपनारायण मिठौलिया ने एक विशिष्ट स्तर पर पहुँचाया था। आज निहायत अविवेक के साथ एक घिसी-पिटी शैली में सारा कार्य-व्यापार चल रहा है।[2] कलकत्ता के हिन्दी क्षेत्र में आज उस नियोजक व्यक्तित्व का अभाव है, जो साधन और शक्ति का समुचित नियोजन कर सम्भावना को उपलब्धि में रूपान्तरित करता है।

ऊपर संकेत किया गया है कि हिन्दी-अध्यापन की आधुनिक-परम्परा कलकत्ता सें ही शुरू हुई थी और फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दी अध्यापकों के अपने रचनात्मक कार्य द्वारा खड़ी बोली गद्य का नींव-निर्माण किया था। ऐतिहासिक तथ्य यह भी है कि कलकत्ता विश्वविद्यालय में ही सबसे पहले (सन् 1919 ई. में) स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी-अध्यापन की व्यवस्था हुई थी। यह श्रेय की बात है कि प्रो. कल्याणमल लोढ़ा ने अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व और व्यवहार-पाटव द्वारा कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग की स्वतन्त्र अस्तित्व-रचना की। इस प्रकार हिन्दी-हित का एक समर्थ सम्भावना-गवाक्ष उद्घाटित हुआ। सतत सारस्वत जागृति द्वारा ही विभाग की समृद्धि सम्भव है। लोढ़ाजी के उत्तराधिकारियों को इस तथ्य के प्रति सचेत रहना चाहिए कि ज्ञान के क्षेत्र में भावना नहीं, विवेक का महत्त्व होता है।

---

1. 'नया सन्दर्भ' के नये अंक में सद्यः प्रकाशित डॉ. रमेशचन्द्र सिंह का विचारोत्तेजक निबन्ध एक ज्वलन्त उदाहरण है।
2. अपनी सारस्वत साधना से हिन्दी को विशिष्ट समृद्धि देने वाले यशस्वी मनीषी स्व. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के परलोक-गमन के बाद उन्हें श्रद्धांजलि देना भी कलकत्ता के आकाशवाणी और दूरदर्शन-केन्द्र ने जरूरी नहीं समझा। हिन्दी-कार्यक्रम के संयोजकों-संचालकों की समझ का यह स्तर है! आचार्य मिश्रजी की विद्या-महत्ता से इन सरकारी केन्द्रों के लोग शायद अपरिचित हैं। अपनी टिप्पणी में माचवेजी ने इस ओर संकेत भी किया था।

कोरी भावना या किसी प्रकार के विजातीय दबाव से विद्या-जगत् के लिए किये गये निर्णय से विद्या व्यापार के प्रदूषित होने की ज्यादा आशंका रहती है। किसी प्रकार के बाहरी हस्तक्षेप से ज्ञान की सहज यात्रा कुंठित हो जाती है। दुर्भाग्यवश देश का पूरा विद्या-लोक ही विजातीय प्रभाव से आक्रान्त हो गया है। नाना अभावों और विकट बाधाओं के बावजूद पहले के आचार्य और समर्पित विद्याव्रती विद्या की अस्मिता को विकलांग होने से बचा सके थे। तब हिन्दी-सेवा राष्ट्र-सेवा की पर्याय थी, जीविकोपार्जन का साधन मात्र नहीं। बलवती निष्ठा के तपे-तपाये लोग ही इस क्षेत्र में आते थे।

प्रतिष्ठानों और शिक्षा-उपाधि-अलंकार से वंचित होते हुए भी अपनी विद्या-शक्ति और हिन्दी-निष्ठा से प्रेरित होकर कलकत्ते में कुछ ऐसे लोग हुए हैं, जिन्होंने व्यक्तिगत स्तर पर बहुतों को भाषा-संस्कार और साहित्य-शिक्षण दिया है। पं. जगदीश नारायण तिवारी ने सुभाषचन्द्र बोस को हिन्दी सिखाई थी। इसी प्रकार पं. परमानन्द शर्मा ने आर्थिक प्रलोभन से विरत रहकर नयी पीढ़ी के साहित्य-जिज्ञासु लोगों का दिशा-निर्देश किया था, उन्हें साहित्य-संस्कार से युक्त किया था। उनके यहाँ नयी पीढ़ी के साहित्य-प्रेमियों और नवोदित रचनाकारों की अन्तरंग गोष्ठी जमी रहती थी। शर्मा जी की साहित्यिक बैठक में सम्मिलित होने वालों में प्रमुख हैं कवि श्री छविनाथ मिश्र, स्व. चन्द्रमौलि उपाध्याय, कथाकार श्री छेदीलाल गुप्त और कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी आचार्य श्री विष्णुकान्त शास्त्री। साहित्य के मनस्वी साधक अपने व्यक्तित्व से साहित्यिक वातावरण को जिलाये चल रहे थे।

पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी के कारण शान्तिनिकेतन हिन्दी साहित्यिकों का तीर्थ बन गया था एक दिन। अब वहाँ कोई जाता है तो नौकरी पाने की आशा में या फिर किसी को नौकरी दिलाने का अधिकारी बनकर। मनीषियों का मेला उठते ही शान्तिनिकेतन की साहित्यिक आबोहवा कमज़ोर हो गयी।

कलकत्ता में हिन्दी साहित्यिकों के ऐसे अनेक केन्द्र थे पहले, जहाँ हिन्दी की बड़ी-बड़ी हस्तियाँ दूरस्थ प्रदेश से आया करती थीं। पुराने समय में पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र का 'दरबार' एक ऐसा ही आकर्षक केन्द्र था। परवर्ती काल में 'मतवाला' और 'विशाल भारत' के कार्यालय प्रमुख केन्द्र बने। 'मतवाला'-कार्यालय तो स्थानिक और बाहर के शीर्षस्थ साहित्यिकों की उपस्थिति से प्रायः समृद्धि-मुखर रहता था। बाद में एक ही प्राणवान साहित्यिक केन्द्र रह गया था कलकत्ता में—बंगीय हिन्दी परिषद्—जो आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल के परलोक-गमन के साथ ही निष्प्राण हो गया। सुकुल जी के जीवन-काल में साहित्य से जुड़ा बाहर से कलकत्ता आनेवाला हर आदमी 'बंगीय हिन्दी परिषद्' में जाना जरूरी समझता था। आज तो जो इस संस्था से जुड़े हैं वे भी तीज-त्योहार को ही इसके श्रीहीन चेहरे को देखकर सन्तोष कर लेते हैं।

पूँजीपतियों की संस्थाओं को, विशिष्ट साज-सज्जा और चाकचिक्य के बावजूद,

वह गौरव कभी नहीं मिला जो साहित्यिकों और विद्याव्रतियों के मजलिस-मंच ने अनायास पा लिया था। मुख्य बात व्यक्तित्व की है। धन-समृद्ध संस्था की ओर भी प्रबुद्ध लोग तभी सुमुख होते हैं, जब उसका किसी ज्ञान-समृद्ध या विद्या-विशिष्ट पुरुष से सम्बन्ध हो। आज यदि कलकत्ता की प्रसिद्ध संस्था 'भारतीय भाषा परिषद्' बाहर के विद्वानों और साहित्यकारों को आकृष्ट करती है तो इसका कारण भवन की भव्यता नहीं, संस्था के निदेशक डॉ. प्रभाकर माचवे का व्यक्तित्व है, जो राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित है। 'बंगीय हिन्दी परिषद्' यदि आज अनाकर्षक हो गयी है तो उसका मूल कारण है उसके प्रतिष्ठाता आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल जैसे व्यक्तित्व का अभाव।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न संस्थाओं के उद्योक्ता प्रायः यह भूल जाते हैं कि मनोरंजन-मंच का रूप ले लेने पर साहित्य और कला की दृष्टि से संस्था को समृद्ध नहीं माना जा सकता। ऐसी संस्था की विधायक भूमिका संदिग्ध हो जाती है। विशिष्ट संस्थाओं के अधिकारियों को इस बिन्दु पर सचेत रहना चाहिए कि मनोरंजन की ललित मुद्रा से विरत रहकर ही स्थायी महत्त्व का साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्य किया जा सकता है जैसा 'भारतीय संस्कृति संसद' ने 'भारतीय संस्कृति' नामक ग्रन्थ के प्रकाशन और स्तरीय विचार-गोष्ठी के आयोजन द्वारा किया है। कलकत्ता की दूसरी प्रसिद्ध संस्था 'भारतीय भाषा परिषद्' अभी बाल्यावस्था में है, इसलिए चटक-चांचल्य एक अंश तक स्वाभाविक है। किन्तु संस्था के उद्देश्य की गुरुता को देखते यह सामान्य अपेक्षा की जाती है कि गम्भीर सारस्वत भूमिका पर वह क्रियाशील हो। वह भूमिका अपेक्षित है जो काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन और बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् के आदि पर्व की भूमिका थी। 'भाषा परिषद्' का उद्देश्य इन संस्थाओं से अधिक बड़ा है। उसी के अनुरूप गम्भीरता और औदार्य अपेक्षित है। तभी यह संस्था अपने मूल उद्देश्य की सही दिशा की ओर अग्रसर हो सकेगी।

साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में साहित्येतर हस्तक्षेप दुर्भाग्यपूर्ण होता है। विद्या-लोक में वणिक-बुद्धि और राजसत्ता का हस्तक्षेप समान रूप से गलत है। दुर्भाग्यवश ये दोनों ही वर्ग विद्या-जगत् को अपने कब्जे में करने के लिए सचेष्ट रहे हैं। आज कलकत्ते में और दूसरी जगह भी जैसे वणिक-बुद्धि साहित्य के नाम पर रंग-बिरंगे तमाशे रचने में अपने बलबूते के साथ क्रियाशील है, वैसे ही, बल्कि उससे भी अधिक मोहिनी मुद्रा में विशेष राजनीतिक दल अपसंस्कृति के प्रतिरोध और जन-संस्कृति के उद्धार-उन्नयन की महत्त्वाकांक्षा की घोषणा करते जनवाद की आड़ में साहित्यिक-सांस्कृतिक मूल्यों को खाने-चबाने को आकुल-व्याकुल दिखाई पड़ता है। पूँजीपति अपनी रंगीन विलास-भूख की तृप्ति के लिए साहित्य और साहित्यकारों का अपने तरीके से इस्तेमाल करना चाहते हैं, दूसरी ओर राजनीतिक दल अपने दल की दलदली जमीन को सामान्य और ज़रखेज बनाने के लिए मोहक नारे टेर कर साहित्यिकों का उपयोग करना चाहते हैं।

आज के रचनाकारों और विचारकों को इन्हीं प्रलोभनों और चुनौतियों के बीच अपना विद्या-दायित्व पूरा करना है।

किसी भी संस्था की विधायक भूमिका संदिग्ध हो जाती है जब विद्या-शक्ति के निर्देशानुसार उसकी धन-शक्ति का नियोजन नहीं होता।[1] स्वामित्व या पद-प्रभुता का अहंकार जब विद्या-व्यापार में प्रत्यूह के रूप में खड़ा होता है तो विद्या-संस्थान की अधोगामी यात्रा अनायास शुरू हो जाती है। प्रख्यात पुराने विद्या-संस्थान, विश्वविद्यालय तथा दूसरे विद्या-केन्द्र और पूँजी के बल पर खड़ी नयी साहित्यिक संस्थाओं के कार्य-व्यापार और स्वरूप को देखकर आज किसी भी जागरूक व्यक्ति को निराशा ही होगी। प्रश्न केवल बंगाल की हिन्दी दुनिया का नहीं है, सारे देश की ही दशा शोचनीय है।[2]

बंगाल के सन्दर्भ में यह तथ्य स्मरणीय है कि पहले जिनके हाथ में धन-शक्ति थी या धन-शक्ति के स्वामियों पर जिनका प्रभाव था वे विद्या की महत्ता से अपरिचित नहीं थे और विद्या के समुचित विकास में बहुविध सहयोग देते थे। रूडमल गोयनका, रामदेव चोखानी, भागीरथ कानोडिया और सीताराम सेकसरिया का धन-शक्ति और विभिन्न न्यासों से अन्तरंग सम्बन्ध था। विभिन्न विद्या-आयोजनों में इनके प्रेरणा-प्रयत्न

---

1. धन-शक्ति और विद्या-शक्ति के सहज सहयोग से कलकत्ते की छोटी संस्थाओं ने जो काम किया वह बड़ी-बड़ी संस्थाएँ नहीं कर पायीं। मानस चतुः शताब्दी समारोह, सूर-पंचशती समारोह, प्रेमचन्द शताब्दी-जयन्ती समारोह के उपलक्ष्य में कलकत्ते के विभिन्न छोटे प्रतिष्ठानों ने महत्त्वपूर्ण आकलन-ग्रन्थ प्रकाशित किये। बंगीय हिन्दी परिषद्, कुमार सभा पुस्तकालय, मिलन मन्दिर, जालान पुस्तकालय, अम्बिका हिन्दी हाई स्कूल और छपते-छपते द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। अपने 27-28 वर्षों के जीवन काल में श्रेष्ठी-वर्ग की प्रसिद्ध संस्था 'भारतीय संस्कृति संसद' ने 'भारतीय संस्कृति' सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण आकलन-ग्रन्थ डॉ. प्रभाकर माचवे के सौजन्य-सम्पादन में प्रकाशित कर पहली बार एक उल्लेखनीय रचनात्मक कार्य किया है। मित्र परिषद् के वार्षिक ग्रन्थ (यथा 'वाद और सिद्धान्त') माचवेजी की देख-रेख में निकलते हैं।
2. हिन्दी के प्रख्यात विद्वान स्व. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने मानस-चतुःशताब्दी-समारोह-काल में उज्जैन से मुझे एक पत्र लिखा था। एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक प्रयोजन और अपनी व्यथा का संकेत पण्डितजी ने किया था कि तुलसी साहित्य की साहित्यिक टीका-मीमांसा तैयार कराने के लिए 150 रु. मासिक का एक सहायक जरूरी है जिसका प्रबन्ध बार-बार लिखने के बावजूद अब तक नहीं हो सका और तुलसीदास के नाम पर सरकार की ओर से लाखों रुपये खर्च कर समारोह आयोजित किये जा रहे हैं। कलकत्ता की प्रसिद्ध संस्था 'भारतीय संस्कृति संसद' की एक गोष्ठी में तुलसीदास पर बोलते हुए मैंने आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की साहित्यिक ज़रूरत का उल्लेख किया था। उस सभा में पं. विष्णुकान्त शास्त्री और पं. अक्षयचन्द्र शर्मा उपस्थित थे। मेरी बात को गम्भीर मुद्रा में सभी ने सुना, लेकिन इस विषय में अपेक्षित काम नहीं हुआ।

से अपेक्षित आर्थिक सहयोग मिलता रहा है और हिन्दी की विकास-यात्रा गतिशील होती रही है। यह एक ऐतिहासिक घटना है।

पहले की छोटी संस्था भी विद्याव्रतियों के सक्रिय सहयोग से राष्ट्रीय स्तर का रचनात्मक कार्य करने में सफल-समर्थ थी। जस्टिस शारदा चरण मित्र की संस्था 'एक लिपि-विस्तार-परिषद्' कलकत्ते की एक ऐसी ही महत्त्वपूर्ण संस्था थी, जिसे कलकत्ते के विशिष्ट हिन्दी विद्वानों तथा लेखकों का सक्रिय सहयोग प्राप्त था और जिसकी गतिविधि का पूरे देश पर असर था।[1] आज तो मनोरंजन की प्रदर्शनी खड़ी करने के लिए ही जैसे कुछ संस्थाओं का जन्म हुआ है। इसी नगर में ऐसे विद्याजीवी रहे हैं, जो हिन्दी के परिनिष्ठित स्वरूप और भाषा की प्रतिष्ठा के प्रति इतने सचेत रहते थे कि एक शब्द की प्रयोग-अनवधानता को लेकर सारे हिन्दी जगत् में आलोड़न की सृष्टि कर देते थे। आज वह सारस्वत सजगता दुर्बल हो गयी है। समय-समय पर आयोजित होने वाले हास्य-कवि-सम्मेलनों के फूहड़ स्वरूप को देखकर किसी भी संस्कृति-सचेत व्यक्ति और रचनाकार का ग्लानि से माथा झुक जाता है। साहित्य की सही अस्मिता के उपहास और अवमानना की यह फूहड़, किन्तु सबल राह है, जिसके विरुद्ध अपनी सीमित शक्ति के बावजूद कलकत्ता के साहित्यिक मूल्यों के सच्चे प्रहरी और रचनाकार

---

1. केवल न्यायपति शारदाचरण मित्र ही नहीं, अनेक बांग्लाभाषी विद्याविशिष्ट पुरुष, समाज सुधारक और राजनेताओं ने देश-हित की प्रेरणा से हिन्दी की राष्ट्रीय महत्ता का खुला समर्थन किया था; उसके प्रचार-प्रसार को स्वदेशी-आन्दोलन की अनिवार्य दिशा मानकर अपेक्षित उद्योग किया था। पूर्ववर्ती काल के विशिष्ट बंगाली महानुभावों को हिन्दी-सुमुखता और उनकी हिन्दी-प्रचार-प्रचेष्टा का संक्षिप्त विवरण इस ग्रन्थ के आरम्भिक दो और अन्तिम दो निबन्धों में द्रष्टव्य है।

   आजादी के बाद स्वदेशी चेतना जिस अनुपात में दुर्बल हुई है, उसी अनुपात में हिन्दी के प्रति अन्यथा भाव प्रबल हुआ है।

   आधुनिक भारत के प्रख्यात शिक्षाशास्त्री महामना आशुतोष मुखोपाध्याय में यह औदार्य था कि अपनी मातृभाषा बांग्ला के साथ ही हिन्दी को कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर स्तर पर प्रतिष्ठित किया था। वह औदार्य परवर्ती काल में दुर्बल हो गया। परिणामतः विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग की स्वतन्त्र अस्तित्व रचना के निमित्त प्रो. कल्याणमल लोढ़ा को प्रत्यूहवाहिनी से कठोर लड़ाई लड़नी पड़ी। लोढ़ाजी ने अपने संस्मरण में कहा है कि शुरू-शुरू में डॉ. शशिभूषण दासगुप्त जैसे साधु आचार्य एवं हिन्दी की महत्ता से पूर्णतः परिचित व्यक्ति तक ने उनके सारस्वत उपक्रम का विरोध किया था। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कथाशिल्पी प्रेमचन्द को लेकर बांग्लाभाषी विभिन्न गोष्ठियों (वर्गों) में जो चर्चा हुई, उसके मूल में व्यवसाय-बुद्धि और राजनीति-बुद्धि ही प्रमुख रूप से क्रियाशील थी। यह सच है कि बांग्लाभाषी सामान्य रचनाकारों में हिन्दी साहित्य और साम्प्रतिक हिन्दी लेखन के प्रति सहज आकर्षण है।

आवाज़ उठाते रहते हैं।

कलकत्ता के व्यवसायियों के बीच में एक बनारसी चरित्र था, जो कलकत्ता के साहित्यकारों द्वारा उतना ही सम्मानित था जितना आचार्य शिवपूजन सहाय, पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' द्वारा 'मतवाला'-संचालक महादेव प्रसाद सेठ। अपने औदार्य और सच्चे कला-प्रेम के चलते सम्मानित थे महादेव प्रसाद सेठ हिन्दी के महान कवि और शीर्षस्थ गद्य-शिल्पियों द्वारा। इन्हीं गुणों से समृद्ध था मदन मोहन अग्रवाल का व्यक्तित्व जो उनके समय के हर खेमे के साहित्यकारों द्वारा आदृत था। महादेव प्रसाद सेठ को याद करते आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा है, "निरालाजी का आदर-सत्कार जैसा सेठजी करते थे, वैसा किसी ने नहीं किया। उनको हमेशा इस बात का ख्याल रहता था कि निरालाजी को कभी कोई अभाव न खले। निरालाजी की सेवा में तत्पर रहना उनके लिए बड़ा आनन्ददायक था। उन्होंने निरालाजी को हथेली का फूल बना लिया था। कलाकार की कला-कुशलता पर रीझना वे जानते थे। कवि के गुणों पर वे लट्टू थे। कहना तो यह चाहिए कि वे निरालाजी के सच्चे उपासक बन गये थे।

"विलक्षण प्रतिभा के धनी पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का सम्मान भी उन्होंने अपूर्व ही किया।...उग्रजी की लेखनी का जादू उन पर ऐसा छा गया था कि वे उस पर निछावर हो गये।

"सेठजी ने कभी मुंशीजी के किसी काम में हस्तक्षेप नहीं किया, स्याह-सफेद जो कुछ करें—मुंशीजी। सेठजी उनको अपना सच्चा अभिभावक समझते थे—उनके संरक्षण में निश्चिन्त मौज करते थे। मुंशीजी चाहे जली-कटी जो भी सुना दें, सेठजी कभी चूँ तक न करते। ऐसा सद्भाव मैंने बहुत कम देखा है।"

अपने प्रसन्न 'मतवाला'-काल को स्मरण करते सेठ महादेव प्रसाद के बारे में उग्रजी ने लिखा है : 'मतवाला' के संचालक श्री महादेव सेठ थे, जिनकी मुख्य लत थी गुणियों पर आशिक होना। मुंशी नवजादिक लाल, ईश्वरीप्रसाद शर्मा, शिवपूजन सहाय, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि में, जिनमें जो खूबियाँ थीं, उन्हें खूब ही सहृदयता से परख, खूब ही प्रेम से पूजा महादेव सेठ ने।

महादेव बाबू 'निराला' जी पर ऐसे मुग्ध थे कि उन्हें गुलाब के फूल की तरह हृदय के निकट बटनहोल में सजाकर रखते थे। अघाते नहीं थे महादेव सेठ उदीयमान कवि 'निराला' के गुण गाते। यह तब कि बात है जब निराला को कोई कुछ भी नहीं समझता था। आज तो बिना कुछ समझे सब-कुछ समझने वाले समीक्षक स्वयंसेवकों की भरमार-सी है।

"महादेव प्रसाद सेठ-साहूकार अंश में उत्पन्न हो व्यापारी गद्दी पर बैठने पर भी फलों से लदे रसिक रसाल-जैसे थे जिन्हें अपने फल लुटाकर द्विजगण का कलरव

श्रवण करना ही रुचता था।...दिवंगत महादेव प्रसाद सेठ का चरित्र परम उदात्त, जिसके लिए पन्ना नहीं, पोथी चाहिए।" महादेव प्रसाद सेठ के पड़ोसी नगर बनारस के स्व. मदन मोहन अग्रवाल शुद्ध व्यापारी आदमी थे, लेकिन कलकत्ता के विद्या-जगत् में अपने समय के सर्वाधिक प्रिय। उन्हें सेठ-साहूकारों की खुशी-नाखुशी की जितनी चिन्ता नहीं थी उतनी छोटे-बड़े विद्याव्रतियों, साहित्यकारों की सुख-सुविधा की थी। अपनी व्यावसायिक चर्या से समय काटकर वे कुछ समय नियमित और नित्य साहित्यकारों के बीच बिताते थे। बिगड़ी रुचि के बनियों की तरह साहित्य और साहित्यकारों को वे अपने मनोरंजन के लिए नहीं इस्तेमाल करते थे और न तो पद-विशिष्ट विद्वानों की तरह वे सामान्य साहित्यकारों से दूरी ही बरतते थे। महादेव प्रसाद सेठ के जिस सद्भाव का संकेत शिवपूजनजी ने किया है, और जो प्रभुता-ग्रन्थि के चलते विद्वानों में भी आज नहीं रह गया है, उसी सद्भाव से साहित्यिकों के बीच मदन बाबू बैठते थे, अपनी सहज सहृदयता से प्रेरित होकर, उनका दुःख-सुख सुनने के लिए, उनकी समस्या और गार्हस्थिक बोझा को कन्धा लगाने के लिए। महादेव प्रसाद सेठ की तरह मदन मोहन अग्रवाल की भी 'मुख्य लत थी गुणियों पर आशिक होना।' विद्या और विद्याव्रती की कद्र करने वाला वैसा व्यापारी तो क्या, कोई सहृदय विद्वान भी कलकत्ते में नहीं दिखाई पड़ा पुरानी पीढ़ी के अवसान के बाद। विभिन्न लोगों के संस्मरणों के आधार पर मदन बाबू की सहृदयता की तस्वीर रचने वाली एक पोथी प्रकाशित हुई है 'कहानी मदन बाबू की'। काशी के विद्या-विशिष्ट परिवार में जन्मी मदन बाबू की विदुषी गृहिणी डॉ. प्रतिभा अग्रवाल ने संस्मरणों को शृंखलित कर पुस्तक का रूप दिया है। संस्मरण-लेखकों को उन्होंने विभिन्न वर्गों में रखकर प्रस्तुत किया है। फुटपाथ से कॉफी हाउस तक के बीच उठने-बैठने वाले जिन साहित्यकारों के साथ मदन बाबू का, भावना के स्तर पर, निहायत अनौपचारिक और घनिष्ठ सम्बन्ध था, उनके नाम के पहले 'चपरकनाती' विशेषण जोड़कर उनकी बातों को औरों से—यानी धन-विशिष्ट और पद-विशिष्ट लोगों से पृथक करके प्रस्तुत किया है। साहित्यिक संस्कार की दृष्टि से इस वर्ग-व्यवस्था और अवज्ञामूलक विशेषण का क्या औचित्य हो सकता है? शुद्ध मानवीय दृष्टि से भी मदन बाबू की उच्छल मैत्री-भावना के प्रति यह कितना न्याय है।

इतिहास के साथ इसी प्रकार का अन्याय कलकत्ते के एक लेखक ने किया था जब उसने बंगाल के हिन्दी लेखकों की आपात्काल की भूमिका का मूल्यांकन किया था और अपने अलावा बंगाल के तमाम लेखकों को बहुसंख्या में बिकनेवाली पत्रिका के माध्यम से निष्क्रिय घोषित कर दिया था। इतिहास की धड़कनों को दबाने की वह कुटिल कोशिश थी। हिन्दी की वर्तमान बंगीय भूमिका की छवि को धूमिल करने वाली ये पीड़क स्थितियाँ हैं। रचनाकारों के बीच भी, संकीर्ण खेमेबाजी के चलते, सहज

साहित्यिक सद्भाव का अभाव है। इन विभिन्न अनाकांक्षित कारणों के चलते बंगाल के हिन्दी साहित्यकारों की प्रातिभ शक्ति की तस्वीर राष्ट्रीय स्तर पर उभर नहीं पा रही है।

× × ×

घर की यातना यह है कि आँगन के प्रातिभ-स्फुलिंग पर घर वालों की दृष्टि नहीं पड़ती, बाहर वाले तो अपने पूर्वग्रह और अहंग्रन्थि के चलते कलकत्ते के रचनाकारों पर दृष्टिपात करना अपराध ही समझते हैं। इतना ही नहीं, कलकत्ता के वातावरण को प्रदूषित मानकर अपने प्रिय लेखक को कलकत्ता छोड़ने का आत्मीय संकेत भी देते हैं। हिन्दी के यशस्वी मार्क्सवादी समीक्षक डॉ. नामवर सिंह की धारणा है कि "कलकत्ते की आबोहवा में ही कुछ ऐसे खतरनाक कीड़े हैं जो वहाँ के रचनाकार को अपनी गिरफ्त में लेकर अपने अनुसार कार्य करने को मजबूर कर देते हैं, 'निराला', 'उग्र' वगैरह वहीं से तो बरबाद होकर आये थे।"[1] इतिहास की जिन्हें जानकारी है वे डॉ. नामवर सिंह की इस धारणा की प्रामाणिकता की जाँच अपने विवेक से करें। यह धारणा अलम् है इस स्थिति को समझने के लिए कि कलकत्ता के बाहर की साहित्यिक दुनिया कलकत्ता के बारे में अन्यथा भाव से आक्रान्त है। बच्चन और अज्ञेय जैसे कुछेक पुरानी पीढ़ी के कवि और विचारक को कलकत्ता में आज भी प्रतिभा दिखाई पड़ती है, अधिकांश तो दिल्ली को ही हिन्दी की प्रतिभा-भूमि मानने लग गये हैं। इसी मान्यता के चलते कलकत्ता उन्हें अप्रतिभ और प्रदूषित लगता है। हक़ीक़त इसके विपरीत है।

राजधानी दिल्ली में उछलने-उछालने की पूरी अनुकूलता है, इसलिए अपना भाग्य जगाने की सहज स्पृहा से हिन्दुस्तान के सारे समझदार लोग! चाहे उनका ऊपरी रिश्ता साहित्य से हो या राजनीति से, दिल्ली की ओर सतृष्ण हैं। और जिन्हें वहाँ थोड़ी जगह और नामावरी मिल जाती है, तुरन्त अपने को सारे हिन्दुस्तान का भाग्य-विधाता मान बैठते हैं; हेकड़ी की मुद्रा में पूरे देश को अपने घटिया बटखरे से तौलने-जोखने लगते हैं।

'बरबाद होने' का अर्थ यदि शारीरिक बरबादी है तो इसके लिए स्थान-विशेष पर दोषारोप करना गलत है, क्योंकि वामाचार का सन्तुलन गड़बड़ होने पर सिद्ध-भूमि के नामी साधक भी बरबाद हो जाते हैं। कुछ वर्षों पूर्व कलकत्ता की एक गोष्ठी में प्रतिपक्षी विचार से उद्वेलित होकर बड़ी उत्तेजना में बोलते हुए डॉ. नामवर सिंह ने कहा था कि कुछ लोगों की नज़र गाय के दूध पर नहीं, उसके गोबर पर ही टिकी रहती है। कलकत्ता के धन-पक्ष को नज़रअन्दाज करते डॉ. नामवर सिंह को देखकर उनकी यह

---

1. पाक्षिक सारिका, पत्र-विशेषांक, 1 अप्रैल, 1982 में प्रकाशित श्री मुद्राराक्षस के नाम डॉ. नामवर सिंह का पत्र द्रष्टव्य।

टिप्पणी अनायास याद आती है। कलकत्ता ने निराला और उग्र को केवल शारीरिक रोग ही दिया था अथवा उस दिन उनके प्रातिभ-प्रकाश का सशक्त अभिव्यक्ति-माध्यम भी दिया था जब हिन्दी के धौरन्धरिक उन्हें काटने-मारने पर आमादा थे?[1] इस प्रश्न के सही उत्तर में ही कलकत्ते की महत्ता की दीप्त इंगिति है। आज इसी प्रकाशन-माध्यम के अभाव[2] के चलते कलकत्ता के प्रातिभ व्यक्तित्व की सही तस्वीर सामने आ नहीं रही है।

जगजाहिर तथ्य है कि दिल्ली और भोपाल को तथा न्यूनाधिक रूप में हिन्दी भाषी प्रदेश के दूसरे राजधानी-नगरों को हिन्दी-विकास के नाम पर जो राजकीय सुविधाएँ प्राप्त हैं, उनसे अहिन्दी भाषी राज्य का महानगर कलकत्ता वंचित है। स्थानिक उच्च पदस्थ हिन्दी-अधिकारियों में भी रचनाकारों के प्रति उस सद्भाव की कमी है, जो पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र के हृदय में अपने समय के विद्याव्रतियों के प्रति थी। यातना-पीड़ित पत्रकार पं. अमृतलाल चक्रवर्ती के प्रति बाबू बालमुकुन्द गुप्त की जो

---

1. "कवि निराला को सेठजी ने ही हिन्दी में रखा है। 'मतवाला' निकालने का एक उद्देश्य उसकी कविता निकालना भी था।"—निराला की साहित्य-साधना, प्रथम खण्ड, पृ. 357
2. कलकत्ता के पूर्ववर्ती हिन्दी प्रकाशकों की भूमिका--प्रेमचन्द, निराला और उग्र के साथ उनका व्यवहार--उल्लेखनीय रहा है, जिसका उल्लेख डॉ. रामविलास शर्मा, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि ने किया है। भारतीय ज्ञानपीठ का प्रधान कार्यालय जब कलकत्ते में था और 'ज्ञानोदय' के साथ ही नवलेखन के प्रकाशन-प्रोत्साहन में श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन सक्रिय थे तब हिन्दी के प्रकाशन-जगत् में कलकत्ता विशिष्ट स्थान पर था।
   सम्प्रति बंगाल के हिन्दी प्रकाशक शुद्ध अर्थार्जन के उद्देश्य से पाठ्य-पुस्तकें वह भी स्तरीय नहीं—प्रकाशित करते हैं। साहित्य और साहित्यकारों से उनका सम्बन्ध बहुत क्षीण है।
   प्रकाशन-क्षेत्र के वयोवृद्ध श्री दीनानाथ कश्यप आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल के दरबार के रसज्ञ पार्षद रहे हैं। सुकुलजी ही नहीं, ज्येष्ठ पीढ़ी के अनेक पण्डितों और साहित्यकारों से इनका अन्तरंग सम्बन्ध रहा है। कश्यपजी की सहज सहृदयता से आकृष्ट होकर उनके यहाँ बाहर से आने पर पं. वाचस्पति पाठक, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, डॉ. सत्यनारायण शर्मा, स्व. भगवती चरण वर्मा, डॉ. रामविलास शर्मा जैसे प्रतिष्ठित लोग प्रायः बैठकी करते रहे हैं। अतिथि साहित्यकारों की सुख-सुविधा के लिए कश्यपजी बराबर तत्पर रहते हैं। इसी कोटि का आत्मीय व्यवहार और सौजन्य श्री शिवनारायण शर्मा से बाहर-भीतर के हिन्दी लेखकों को मिलता रहा है। स्थानिक लेखकों की पुस्तक के प्रकाशन में भी कश्यपजी सक्रिय रुचि लेते रहे हैं। पुस्तक-व्यवसाय से रसज्ञता और सहृदयता वाला पक्ष दिनोंदिन गिरता जा रहा है। अब तो कलकत्ता में हिन्दी की साहित्यिक पुस्तकों की एक भी अच्छी दुकान नहीं है। पहले बाबू अयोध्या सिंह की दुकान—'विशाल भारत बुक डिपो'--थी, जहाँ पुराना-नया स्तरीय प्रकाशन उपलब्ध हो जाता था और जहाँ उग्रजी जैसे साहित्यकार प्रायः बैठे दिखाई पड़ते थे।

सक्रिय सहानुभूति थी या रुग्ण मुक्तिबोध के लिए जो वास्तविक सद्भाव श्री अज्ञेय के हृदय से आर्थिक सहयोग के रूप में प्रकट हुआ था वह आज किसी समर्थ व्यक्ति में नहीं दिखायी पड़ता। हिन्दी-निष्ठा की प्रेरणा भी आजादी के बाद म्लान हो गयी है, अन्यथा गैरसरकारी समृद्ध साधनों का नियोजन यहाँ की प्रातिभ ऊर्जा के प्रोत्साहन-प्रकाशन में हो सकता था। विद्या-विमुखता और अर्थ-निष्ठा आज का एक बड़ा अभिशाप है। धनपतियों की नज़र चालू सिक्के पर ही गड़ी रहती है। 'अपने सिक्के' से सही प्रतिभा का अभिषेक करना उनकी आचार-संहिता के प्रतिकूल है। हल्ला में हाथ उठाना और मुकुट-माला को ही मान देना वे जानते हैं। पैसे की प्रभुता प्रतिभा की परवाह नहीं करती। (द्रष्टव्य : सेकसरियाजी का संस्मरण, पृ. 429) कलकत्ता के प्रति साहित्य के मठाधीशों की उपेक्षा, धनपतियों की असहयोग भावना और राजशक्ति की बेरुखी के चलते यहाँ की प्रातिभ ऊर्जा रचनाकार के निजी उद्योग से ही यदा-कदा प्रकाश में आ पाती है। एक बड़ी सम्भावना और शक्ति अनेकमुखी बाधा के चलते दबी पड़ी है।

नये विद्याव्रतियों में पुरानी पीढ़ी की संघर्ष-क्षमता भी नहीं है। आज कोई पं. रुद्रदत्त शर्मा, पं. अमृतलाल चक्रवर्ती और पं. किशोरीदास वाजपेयी की राह का पथिक बनने को तैयार नहीं है। पं. किशोरीदास वाजपेयी की संघर्षमय जिन्दगी के सन्दर्भ में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने लिखा था, ''यह दुनिया क्या एक क्षण के लिए भी बर्दाश्त करने लायक है जहाँ अनमोल प्रतिभाओं को काम करने का अवसर न मिले और ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे गुलछर्रे उड़ाते राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर अपना नाच दिखलाएँ।'' कलकत्ते की 'अनमोल प्रतिभाओं' को अपनी शक्ति को प्रकाशित-प्रमाणित करने का अनुकूल अवसर नहीं मिलता। परिणामतः जनवादी मार्का के आभिजात्य का सुख भोगने वाले लोगों को कलकत्ता पर तरह-तरह की तोहमत जड़ने का अवसर अनायास ही मिल जाता है। राजनीति में वर्गवाद फिर भी खप जाता है, किन्तु साहित्यिक मूल्यों के नामी पहरुए जब साहित्य के आँगन में वर्गवाद की आरती उतारने लगते हैं तो अमंगल की भूमिका क्रियाशील हो जाती है। साहित्यिक-सांस्कृतिक मूल्यों से वर्गवाद का रिश्ता तिल-तन्दुल जैसा है। मगर यह विवेक आज कमजोर होता दिखाई पड़ रहा है और राजनीतिक सनक की राह पर ही विचार-जगत् के यात्री भी चलने लग गये हैं। परिणामतः प्रतिभा के मूल्यांकन में राजनीतिक 'खूँटे' जाति, गोत्र, वर्ग और भूगोल प्रमुख होता जा रहा है। इस अनाकांक्षित और अनुचित विचार-शैली के चलते सच्ची प्रतिभा हाशिये के नीचे दबती जा रही है। इस दुर्भाग्य से कलकत्ते की अनेक विशिष्ट प्रतिभाएँ आहत हैं।

रचनाकारों की भी अपनी सनक होती है। अतिरिक्त आधुनिकता की स्पृहा और ऊँची नामावरी की अनियन्त्रित भूख से निरुपाय होकर काशी के एक नये

रचनाकार आधुनिक असाध्य व्याधि की कामना-पीड़ा से बेचैन हो उठे थे। मैं यह नहीं कहता कि निराला और उग्र के प्रवास-नगर कलकत्ता के वर्तमान रचनाकारों में सनक का बिलकुल अभाव है। 'श्मशानी पीढ़ी' का उदय और उसकी रुग्ण चेतना एक ऐसी ही भयंकर सनक थी। अपने को नज़रुल-निराला का समकक्ष मानकर सारे हिन्दुस्तान को औद्धत्य-मुद्रा में देखने वाले और विद्या की परम्परा से अपरिचित होते हुए भी आचार्य-मुद्रा में छोटी-मोटी बैठकों के बीच हाथ भाँजने वाले लोग भी यहाँ हैं। इन दुर्बलताओं के बावजूद, मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ, यहाँ आज भी ऐसी प्रतिभाएँ हैं, जो राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न विधाओं के विशिष्ट रचनाकार के समकक्ष खड़ी हो सकती हैं, ऊँची दीख सकती हैं। सवाल है, उस धरातल को निषेधों और वर्गीय बन्दिशों से मुक्त कर सर्वसुलभ करने का, साहित्यिक प्रतिमान और उन्मुक्त दृष्टि से रचना पर विचार करने का, सही प्रतिभा को सही तरजीह देने का। सहज औदार्य और विवेक से विचार करने पर आज के कलकत्ता की साहित्यिक आबोहवा प्रदूषित नहीं लगेगी। हिन्दी साहित्य की बंगीय भूमिका का अतीत समृद्ध था, वर्तमान अनुर्वर नहीं है।

चर्चा है कि नयी साहित्य-पीढ़ी अपनी विरासत से उदासीन होती जा रही है। पूरे देश की वर्तमान दशा से यह चिन्ता जुड़ी है, जो भावी अमंगल का संकेत देती है। अपनी विरासत से कटी जाति का भविष्य सम्भावनापूर्ण नहीं हुआ करता। इस ग्रन्थ की परिकल्पना इसी चिन्ता से प्रेरित है। नयी पीढ़ी की विद्या-सम्भावना को समृद्ध करने की प्रेरणा से ही हिन्दी की परम्परा के एक उज्ज्वल और संघर्षपूर्ण अध्याय की एक छोटी तस्वीर विभिन्न विद्वानों के सहयोग से तैयार की गयी है जो समृद्ध अतीत और सम्भावनापूर्ण वर्तमान का संकेत देती है। यह इतिहास नहीं है, इतिहास की दीप्त रेखाओं का आकलन है, जो वर्तमान को अपने अतीत के प्रति सुमुख करता है। स्वाभाविक रूप में कुछ ही विवरण और विशिष्ट कृती नाम इस ग्रन्थ में आ सके हैं।[1] भावी इतिहास लेखक और अनुसन्धित्सु अपनी अचूक दृष्टि द्वारा सारे विवरणों और नामों को समेटकर ऐतिहासिक इतिवृत्त तैयार करेंगे और तब हिन्दी साहित्य की बंगीय भूमिका अधिक पूर्णता के साथ उद्घाटित हो सकेगी। कुछ विशेष दावा नहीं, किन्तु यह सन्तोष ज़रूर है कि इस ग्रन्थ द्वारा हिन्दी की बंगीय भूमिका की समृद्ध इंगिति पहली बार विद्या जगत् के सामने प्रकट हो रही है।

कलकत्ता-700015
29-7-83

—कृष्णबिहारी मिश्र

---

1. श्री कन्हैयालाल सेठिया और श्री अरुण प्रकाश अवस्थी का नाम कविता के प्रसंग में और श्री सन्हैयालाल ओझा का नाम कथा-विवेचन के प्रसंग में छूट गया है। इस तरह की कुछ त्रुटियाँ हैं, जिनका संशोधन परवर्ती लेखक अपनी अचूक दृष्टि से करेंगे।

आभार

विविध क्षेत्रों के उन तमाम सहयोगियों के प्रति हम आभारी हैं, जिनके सक्रिय सहयोग से ही यह अनुष्ठान पूरा हो सका। पक्षाघात से पीड़ित होते हुए हिन्दी के प्रख्यात आचार्य स्व. पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपना निबन्ध भेजकर हमारी प्रार्थना का समुचित उत्तर दिया। इसी प्रकार अपनी व्यस्त विद्या-चर्या से समय निकालकर शीर्षस्थ कृती साहित्यकार श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने हमारे लिए निबन्ध लिखा। यशस्वी विचारक डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी गार्हस्थिक असुविधा के बावजूद हमारे अनुरोध का यथासमय अपेक्षित उत्तर दिया। इन मनीषियों के अनुग्रह के प्रति हम हृदय से कृतज्ञ हैं। कृतज्ञ हैं, अपने सभी सहयोगी लेखकों के प्रति। उन लेखकों के प्रति भी हमारे हृदय में अशेष सम्मान-भाव है, जिनके निबन्ध का हम अपने इस ग्रन्थ में उपयोग नहीं कर पाये हैं। हमें हार्दिक खेद है कि परिश्रमपूर्वक तैयार की गयी कुछ सामग्री को हम अपने ग्रन्थ में सम्मिलित नहीं कर सके हैं, इसलिए नहीं कि उनका स्तर नीचा था, बल्कि इसलिए कि हमारी परिकल्पना के अनुरूप वे निबन्ध नहीं थे।

इस परिकल्पना को पूरा करते असंख्य व्यावहारिक बाधाओं से टकराना पड़ा, कई बार तो कुछेक अवांछित तत्त्वों द्वारा रचित विकट प्रत्यूहों ने हमारे संकल्प पर ही हमला कर दिया। पुराने विद्या-साधकों की संघर्ष-कथा ने हमें सहारा और प्रेरणा दी और हमारा अनुष्ठान खण्डित होने से बच गया। अनुत्साह के क्षणों में सहृदय लोगों ने हमें अपने व्यावहारिक सहयोग द्वारा सहारा दिया। विद्या-विशिष्ट श्री रेवतीलाल शाह, कलकत्ता के प्रतिष्ठित साहित्यकार श्री शंकर माहेश्वरी और हमारे आत्मीय बन्धु डॉ. रामबली तिवारी के सहयोग का हमारे मन पर गहरा असर है। इसी प्रकार 'मणिमय' से एक दिन कानूनी लड़ाई लड़ने वाले श्री अशोक जोशी ने अपनी सहृदयता के आग्रह से हमारी योजना को अपेक्षित गति दी। 'मणिमय' के पुराने शुभचिन्तक श्री महातम पाण्डेय, श्री केशवप्रसाद शर्मा, श्री रतनलाल सुराणा और श्री इन्द्रबहादुर सिंह ने हमारे अनुष्ठान के रूपायन में जो सहायता दी वह अविस्मरणीय है। प्रतिष्ठित कवि पं. छविनाथ मिश्र, श्री मृत्युंजय उपाध्याय, श्री कृष्ण कुमार राय, श्री अनिल कुमार शुक्ल और श्री कमलेश कृष्ण हमारी इस सारस्वत यात्रा के आरम्भ से उपसंहार तक अपनी जागरूक सक्रियता के साथ हमसे जुड़े रहे। श्री अच्युतानन्द राय और

हिन्दी भाषा-साहित्य के प्रारंभिक उत्थान में बंगाल का ऐतिहासिक योगदान है। हिन्दी के पठन-पाठन, हिन्दी पत्रकारिता, साहित्य सृजन एवं उसके प्रकाशन में बंगाल की बीज भूमिका को प्रसिद्ध गद्यशिल्पी पं. कृष्णबिहारी मिश्र द्वारा सम्पादित प्रस्तुत ग्रंथ हिन्दी साहित्यः बंगीय भूमिका में हिन्दी के सुविदित रचनाकारों, साहित्य-मनीषियों, मूर्धन्य प्राध्यापकों एवं पत्रकारों ने रेखांकित किया है।

भारतीय विद्या मन्दिर
12/1 नेली सेनगुप्ता सरणी
कोलकाता-700087

ISBN: 978-81-89302-48-1